

आन्तरिक लय की कवयित्री : महादेवी वर्मा

डॉ. सत्य प्रकाश पाल

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी—221005 मो. 8707547595

ईमेल : satya10bhu@gmail.com

महादेवी वर्मा हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। आधुनिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में से एक होने के कारण इन्हें आधुनिक युग की मीरा भी कहा जाता है। महादेवी जी ने स्वतंत्रता से पहले और बाद का भारत दोनों देखा था। उन्होंने व्यापक समाज के भीतर विद्यमान हाहाकार, रूदन को देखा, परखा और करूणा से भरकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और श्रृंगार से सजाया कि दीपशिखा में भी जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उन्होंने केवल पाठकों को ही नहीं, समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया। जैसे कि मीरा का विद्रोह बहुत दूर तक उनका निजी विद्रोह, अपने ऊपर लगाई गई पाबंदियों से बाहर आने के हेतु किया गया विद्रोह मनोवांछित जीवन जीने की इच्छापूर्ति के लिए किया गया विद्रोह, जिसके तार नारी-पराधीनता तथा उसकी मुक्ति की आकांक्षा से जुड़े हैं। मीरा का विद्रोह बड़ा है उसके वृहत्तर संदर्भ हैं। मीरा ने अपने समय में चली आ रही सामाजिक संरचना पर सवाल उठाए, वे मनचाहा समाज न रच सकीं हो। पराधीनता से नारी को मुक्ति की आकांक्षा को उन्होंने उजागर किया, मुक्ति के सपने को नारी मन में जीवित रखा, उनका इस बिन्दु पर महत्त्व निर्विवाद है।

महादेवी की प्रतिक्रिया भी मीरा की तरह उनके काव्य में मिलती है। महादेवी की प्रतिक्रिया एक नारी की तरह घर की सीमा में ही हुई। परंतु उनकी भी आरंभिक रचनाओं में जो भावुक असंतोष और तीव्र पीड़ा मिलती है, वह अंत तक जाते-जाते बौद्धिक परितोष में शामिल होने लगी। महादेवी को भीतर-भीतर परिक्षीणता का अनुभव होता रहा। ऊपर-ऊपर आनंद और संतोष की फीकी हँसी थी तथा नीचे अपने मन से चुपचाप यही कहती थीं कि

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जला।"

उन्हें अपने जलने में ही संतोष का अनुभव होने लगा। उन्होंने समझ लिया कि इसके अतिरिक्त जीवन की अब और कोई गति नहीं है। इसलिए पीछे वे इस जलने की क्रिया में और किसी भी तरह के बाहरी हस्तक्षेप का वरण करने लगीं। जिधर वह जा रही हैं, उधर जाएँ कोई रोके क्यों? कोई दया क्यों दिखाए? जो होना है वह हो ले—

"यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।"

महादेवी वर्मा जी की रचनाओं का गहन अध्ययन करने पर देखने को मिलता है कि उनकी कविताओं में, गीतों में, निबंधों में, लेखों में, संस्मरणों एवं कहानियों में भारतीय नारी की व्यथा, मानसिक प्रताड़ना से उपजी मर्यान्तक पीड़ा पग-पग पर देखने को मिलती है। माँ, बहन, बेटी, जीवन-संगिनी के विभिन्न नारी रूपों की कुशल संवाहिका होते हुए भी पुरुष-प्रधान समाज द्वारा उसका आत्म-सम्मान बार-बार आहत होने के ज्वलंत साक्ष्य प्रवल बिंबात्मक चित्रात्मकता से सम्पुक्त, पाषाण हृदयों को भी ब्रवित करने की काव्यात्मक क्षमता से परिपूर्ण संवेदनात्मक शब्दचित्र सहज ही मिल जाते हैं—

**"मैं नीर भरी दुःख की बदली,
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा।
क्रंदन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक से जलते ॥"**

महादेवी वर्मा के लिए वेदना केवल नफ़रत का विषय ही नहीं है अपितु वह प्रेम का विषय भी है। अर्थात् जीवन में वेदना का भी उतना ही महत्त्व है जितना आनंद का। इसके बिना वे विस्तृत जग के आंगन को सूना मानती हैं। कई स्थानों पर तो वे प्रेम की पीर में करूणा और वेदना की निस्सीमता का पुल भरकर मिलन का तिरस्कार करती भी दिखाई पड़ती हैं तथा विरह को ही प्रेम-साधनों का एकमात्र सहाय और एकमात्र साधन मानते हुए कहती हैं—

**"क्या अमरों का लोक मिलेगी,
तेरी करूणा का उपहार।
रहने दो हे देव अरे यह,
मेरा मिटने का अधिकार ॥"**

दुःख मार्ग से आने वाले प्रियतम के पथ शूल भी उनको बहुत रुचिकर एवं परमप्रिय हैं—

**"दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"**

—यह कहकर वे विरह में मिलन और मिलन में ही विरह का साक्षात्कार करने लगती हैं। उनका प्रियतम तो 'प्राणों को अंतिम पाहुन' है। उसकी प्रतीक्षा में यह प्रेयसी सुख प्राप्त करती है जो उन्हीं के शब्दों में चिर काम्य है। वे वेदनापूरित बिल्कुल भी नहीं होती हैं। उन्हें तनिक सा भी कष्ट नहीं होता है। वे तो प्रतीक्षा के इस अंधकार में विरह-दीपक जलाकर परिष्कार करती हैं—

**"अपने इस सूनपन की,
मैं हूँ रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर,
करती रहती दीवाली ॥"**

महादेवी वर्मा जी अपने अंतमन की टीस, पीड़ा की मार्मिक अथवा विवशता उनकी रचनाओं में देखने को मिलती है—

**"विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली॥"**

महादेवी जी ने छायावादी और रहस्यवादी कवितायें अवश्य लिखीं पर वह मीरा की तरह यथार्थ से कभी नहीं कटी। मीरा तो श्रीकृष्ण की ऐसी प्रेम दीवानी हुई कि उन्होंने अपनी गृहस्थी ही त्याग दी, साधु-संतों के बीच एकतारा लेकर कृष्ण से वियोग और आसक्ति के भजन गाती रहीं, कृष्णमय ही हो गईं परन्तु महादेवी जी अपने सांसारिक उत्तरदायित्वों से कभी विमुख नहीं हुईं। उन्होंने लड़कियों की

शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया। महिलाओं को समाज में सही स्थान दिलाने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहीं। वे स्वतन्त्रता सेनानी भी थी और शिक्षिका भी थी। छायावादी काव्य उनकी विद्या भी, यथार्थ से पलायन नहीं। महादेवी वर्मा जी दृढ़ निश्चयी योद्धा की भांति जीवन संघर्ष करती रहना चाहती हैं। जीवन की इस अनोखी कारा के कोहरे से भरे वातावरण में ही तो परम सत्य की चिदानन्द ज्योति के दर्शन होते हैं, और एक समय तो ऐसा भी आता है जब वे सभी विषमताओं से ऊपर उठकर उस परम सत्य के दिव्य संदेश को जन-जन तक पहुँचा देती है -

**"विरह का युग आज दीखा मिलनी के लघु पल सरीखा,
दुःख-सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझकों हो गये सब मधुर प्रिय की भावना लें।"**

महादेवी वर्मा जी की जीवन पथ-यात्रा में पंथ ही इनका साथी है और वेदना की साधनात्मकता, सजगता तथा जीवन के संकल्पों का समन्वय ही उत्साह, साहस और कर्म-प्रेरणा का आवेगमय उन्मेष बनता है। विरह रूपी कमल पुष्प के इस जीवन मूल में जल ही है और नयन पात्र भी इसी से आपूरित है और महादेवी वर्मा जी कहती हैं कि आध्यात्मिक और भावात्मक प्रतीकों का बाहुल्य महादेवी वर्मा की सूक्ष्म और गहन कल्पना शक्ति का तो परिचायक है ही उनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ को भी वह स्पष्ट करता है। लौकिक प्रतीकों से वे अलौकिक को व्यक्त कर देती हैं। अपने काव्य संग्रहों के शीर्षक भी महादेवी वर्मा ने प्रतीकात्मक ही रखे हैं। जैसे कि 'नीहार'-नैराश्यपूर्ण वातावरण का प्रतीक है। 'रश्मि' आशा, उल्लास का प्रतीक है। 'नीरजो' सूर्य अर्थात् परमतत्त्व की ओर उन्मुख रहने वाली आत्मा का प्रतीक है। 'सांध्यगीत' साधन के विकास और आस्था का प्रतीक है। तथा 'दीपशिखा' विरह रूपी रात्रि को झेलती एवं साधना प्रारम्भ करती आत्मा का प्रतीक है। उनके 'दीपक' प्रतीक से जलन, पीड़ा, वेदना का अर्थ मात्र ही स्पष्ट नहीं होता अपितु स्वयं जलकर संसार को प्रकाशवान बना देने का अर्थ भी प्रसारित होता है और उन्होंने करुणा एवं वेदना को दूसरे ढंग से परिभाषित किया—

**"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में कर जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।।"**

महादेवी के गीतों में जीवन रूपी नदी के सुख, दुःख रूपी दो किनारों के बीच निरंतर बहते हुए परम आनंद के महासागर में मिल जाने का आभास होता है। संयोग और वियोग में दुख और आनंद का जो अनूठा सत्य है वह इस संवेदनशील मानव हृदय को इस संसार के अविच्छिन्न को न छोड़ने का हठ 'शाश्वत पिपासा' बनाए रखता है। महादेवी वर्मा ने जीवन के इसी गढ़ तथा गहन रहस्य से वेदना के आनंद में साक्षात्कार किया तथा उसे काव्य संसार के पावन बंधनों में जकड़ दिया और कहती हैं कि—

**"चिर मिलन-विरह-पुलिनों की सरिता हो मेरा जीवन
।**

प्रतिफल होता रहता हो युग फूलों का आलिंगन ॥"

अंततः कह जा सकता है कि महादेवी वर्मा जी की वेदना में निराशा के तो कहीं दर्शन होते ही नहीं, आशावादिता ही सर्वत्र दिखायी पड़ती है। यही आशावादिता ही प्रिय से मिलने की आतुरता को और अधिक बढ़ाती है तथा उस आतुरता से आनंद की अनुभूति कराती है। महादेवी जी अपनी वेदना और दुःख के अंतस में भी सर्वजन के सुख का अनुभव करती हैं। महादेवी वर्मा जी वेदना की प्रतिमूर्ति हैं और आधुनिक 'मोरा' भी।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'औरत' में ग्राम-चित्रण

डॉ. पी. एम. आर. जयंती,

व्याख्याता - हिन्दी

एस.के.आर. गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज फॉर वुमेन (ए), नागराजुपेट, (कडप्पा)

सारांश- डा. शिवप्रसाद सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, जिनका कथा-सृजन मुख्यतः ग्रामीण जीवन और उसके यथार्थ पर केंद्रित है। उनके उपन्यासों में सामाजिक विषमता, शोषण, बेरोजगारी, स्त्री की विवशता और संघर्ष का मार्मिक चित्रण मिलता है। 'औरत' उपन्यास (1992) विशेष रूप से ग्रामीण नारी-जीवन की पीड़ा का दस्तावेज है। इसमें नायिका सोनवां सहित कई महिला पात्रों के माध्यम से स्त्री पर होने वाले शोषण, अत्याचार और सामाजिक रूढ़ियों का उद्घाटन किया गया है। सोनवां का जीवन जर्मींदारी अत्याचार का शिकार होकर त्रासद अंत पाता है, वहीं प्रतिभा बंसल, चंद्रा, रूपवां और सुखिया जैसे पात्र स्त्री की अलग-अलग स्थितियों और संघर्षों को सामने लाते हैं। 'औरत' का नामकरण अत्यंत सार्थक है क्योंकि इसमें स्त्री के विविध रूपों—शोषिता, संघर्षशील और आत्मनिर्भर—का यथार्थ अंकन किया गया है। इस प्रकार यह उपन्यास न केवल ग्रामीण महिला जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है बल्कि समाज सुधार और नारी-जागरण का सशक्त संदेश भी देता है।

बीज वाक्य- डा. शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास 'औरत' ग्रामीण नारी-जीवन की विवशता, संघर्ष और यथार्थ का जीवंत दस्तावेज है।

डा. शिवप्रसाद सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक प्रतिष्ठित और सशक्त साहित्यकार हैं। उनके कथा-सृजन का मूल क्षेत्र ग्रामीण जीवन है। गौरव-प्राप्त साहित्यकार डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त 1928 ई. को उत्तर प्रदेश के काशीनगर स्थित जलालपुर गाँव में एक मध्यमवर्गीय कृषक परिवार में हुआ। इनके पिताजी का नाम श्री चंद्रिका प्रसाद सिंह तथा माताजी का नाम श्रीमती कुमारी देवी था। आप परिवार के ज्येष्ठ पुत्र थे।

शैक्षणिक उपलब्धियों में भी डॉ. सिंह ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की। उन्होंने सन 1947 में हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। तत्पश्चात् 1951 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. द्वितीय श्रेणी में तथा 1953 में एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। आगे चलकर 1957 में उन्होंने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्त किया गया और वर्ष 1967 में आप रीडर के पद पर आसीन हुए।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के कृतित्व में ग्रामीण चित्रण- डॉ. शिवप्रसाद सिंह पचासोत्तर हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। 'कर्मनाशा की हार' सन् 1958 में प्रकाशित हुआ। इसमें गाँव के दीनहीन और निम्न वर्गों का जर्मींदारी वर्ग द्वारा किया गया शोषण का सजीव चित्रण मिलता है।

'इन्हें भी इंतजार है' 1961 में प्रकाशित हुआ। इसमें भारतीय अभिशास नारी का मार्मिक चित्रण है। 'मुरदासराय' 1966 में प्रकाशित हुआ। इसमें समाज और व्यक्ति के बीच का संघर्ष, प्रेम-संबंधों की टूटन, हिन्दू-मुसलमान सम्प्रदायों की एकता, समाज की निम्नवर्गीय नारियों का शोषण, बेरोजगारी, आर्थिक और पारिवारिक संबंधों का सहज एवं सजीव चित्रण मिलता है। 'अंधेरा हँसता है' 1975 में प्रकाशित हुआ। इसमें आम आदमी की जिन्दगी का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक किया गया है।